Volume-6, No. 2 Aug.-2019, pp. Hin.01-12

प्राचीन कालीन वैदिक शिक्षा प्रणालीः एक अध्ययन

डॉ. वीरेन्द्र कुमार,असिस्टेंट प्रोफेसर,
शिक्षाशास्त्र विभाग
डी.पी.बी.एस. पी.जी. कालिज अनूपशहर बुलन्दशहर उ.प्र. भारत।
चौ.चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ उ.प्र.भारत

भारत की सभ्यता एवं संस्कृति संसार की प्राचीनतम सभ्यता एवं संस्कृतियों में से एक है परन्तु इनमें सबसे अधिक प्राचीन कौन–सी है, इस विषय में सबके अपने–अपने दावे है। हाँ, यह बात सभी मानते हैं कि भारतीय वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद) संसार के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। सामान्यताः वेदों को धार्मिक ग्रंथों के रूप में देख समझा जाता है, परन्तु वास्तव में वेद उस समय के ज्ञान कोश हैं। इनमें उस समय तक अर्थों द्वारा खोजा एवं विकसित समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान सूत्रा रूप में संग्रहीत है। परन्तु वेदों की रचना कब और किन विद्वानों ने की, इस विषय में विद्वान का मत नहीं हैं जर्मन विद्वान **मैक्समूलर** 'सबसे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने भारत 'आकर इस क्षेत्र में शोध कार्य शुरू किया। उनके अनुसार, वेदों में सबसे प्राचीन ऋग्वेद है और इसकी रचना 1200 ई० पू० में हुई थी। **लोकमान्य तिलक** ने ऋग्वेद में वर्णित नक्षत्र स्थिति के आधार पर इसका रचना काल 4000 ई० पू० से 2500 ई० पू० सिद्ध किया है। **पद्यश्री डॉ० वाकणकर** के अनुसर वेदों की रचना 5000 ई० पू० तक हो चुकी थी।अब थोड़ा विचार करें इतिहासकारों के मत पर। इतिहासकार हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई में प्राप्त अवशेषों के आधार पर हमारी सभ्यता एवं संस्कृति को केवल ई० पू० 3500 वर्ष पुरानी मानते हैं। अपने गले यह बात नहीं उतरती। हतिहासकारों की बात को ही लीजिए। इन्होंने यह माना है कि हमारे देश भारत में ई० पू० 7 वीं शताब्दी में लोक भाषा प्राकृत और पाली थी। इन्होंने यह भी माना है कि उससे पूर्व हमारे देश में संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था और वेदों की रचना हो चुकी थी। अब थोड़ा विचार करें वेदों की भाषा, शैली और विषय–सामग्री पर विचार करें, वेदों की संस्कृत भाषा इतनी समृद्ध एवं परिमार्जित है और उनकी विषय–सामग्री इतनी विविध, विस्तृत एवं उच्च कोटि की है कि उस समय इनके विकास में कम से कम 7–8 हजार वर्ष का समय अवश्य लगा होगा। इन तथ्यों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे देश की सभ्यता एवं संस्कृति कम से कम ई० पू० 10 हजार वर्ष पुरानी अवश्य है और इतना ही पुराना इसका शिक्षा का इतिहास है।

मुख्य शब्द– वैदिक शिक्षा, शिक्षा के उद्देश्य, पाठयचर्या, गुरू–शिष्य सम्बंध, गुण, दोष,टोल, घटिका, चरण, चतुत्पथी

वैदिक शिक्षा प्रणाली का अर्थ

वैदिक काल में जिस शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ उसे वैदिक शिक्षा प्रणाली कहते हैं। पूरे वैदिक काल में शिक्षा का प्रशासन एवं संगठन तो सामान्यतः एक–सा रहा परन्तु समय की परिस्थितियों और ज्ञान एवं कला–कौशल के क्षेत्र में विकास के साथ–साथ उसकी पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों में विकास होता रहा। यहाँ वैदिक शिक्षा प्रणाली के मुख्य अभिलक्षणों का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत है।

शिक्षा का प्रशासन एवं वित्त

वैदिक शिक्षा प्रणाली के प्रशासन एवं वित्त के समम्न्ध में तीन तथ्य उल्लेखनीय हैं–

1. निःशुल्क शिक्षा–वैदिक काल में शिक्षा पूर्णरूप से निःशुल्क रही। शिष्यों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था भी गुरु स्वयं करते थे। हाँ, शिक्षा पूर्ण होने पर शिष्य गुरुओं को अपनी सामर्थ्यानुसार गुरु दक्षिणा अवश्य देते थें।

2. राज्य के नियन्त्रण से मुक्त–वैदिक काल में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व नहीं था परिणामतः उस पर राज्य का कोई नियन्त्रण भी नहीं था। उस समय शिक्षा पूर्णरूप से गुरुओं के व्यक्तिगत नियन्त्रण में थीं।

3. आय के स्रोत दान, भिक्षा और गुरु दक्षिणा–वैदिक काल में गुरुकुलों को आज की भाँति राज्य से कोई निश्चित अनुदान प्राप्त नहीं होता था। उस समय राजा, महाराजा और समाज

के धनी वर्ग के लोग इन गुरुकुलों को स्वेच्छा से भूमि, पशु, अन्न, वस्त्र, पात्र और मुद्रा दान स्वरूप भेंट करते थे। गुरुकुलों की दैनिक आवश्कताओं की पूर्ति के लिए शिष्य समाज से नित्य भिक्षा माँग कर लाते थे। इन गुरुकुलों की आय का तीसरा स्रोत था गुरु दक्षिणा। शिष्य अपनी शिक्षा समाप्त होने पर गुरुओं को अपनी सामर्थ्यानुसार गुरु दक्षिणा देते थे; भूमि, पशु, अन्न, वस्त्र, पात्र अथवा मुद्रा भेंट करते थे।

शिक्षा की संरचना एवं संगठन

वैदिक काल में शिक्षा केवल दो स्तरों में विभाजित थी–प्रारंभिक और उच्च।

1. प्रारम्भिक शिक्षा–वैदिक काल में प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में होती थी। लगभग 5 वर्ष की आयु पर किसी शुभ दिन बच्चे का **विद्यारम्भ संस्कार** किया जाता था। यह संस्कार परिवार के कुल पुरोहित द्वारा कराया जाता था। बच्चे को स्नान कराकर नए वस्त्र पहनाए जाते थे और उसे कुल पुरोहित के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था। कुल पुरोहित नया वस्त्र बिछाता था और उस पर चावल बिछाता था। इसके बाद वेद मन्त्रों द्वारा देवताओं की आराधना की जाती थी और बच्चे की उंगली पकड़कर उसके द्वारा बिछे हुए चावलों में वर्णमाला के अक्षर बनवाए जाते थे। कुल पुरोहित को भोजन कराकर दक्षिणा दी जाती थी। कुल पुरोहित बच्चे को आशीर्वाद देता था और इसके बाद बच्चे की शिक्षा नियमित रूप से प्रारम्भ होती थी।

2. उच्च शिक्षा–वैदिक काल में उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुलों में होती थी। 8 से 12 वर्ष की आयु पर बच्चों का गुरुकुलों में प्रवेश होता था। गुरुकुलों में प्रवेश के समय बच्चों का **उपनयन संस्कार** होता था। इस संस्कार के बाद उनकी उच्च शिक्षा प्रारम्भ होती थी।

शिक्षा का अर्थ

वैदिक काल में शिक्षा शब्द का प्रयोग ज्ञान, विद्या, विनय और अनुशासन के पर्याय के रूप में किया जाता था और इन रूपों में भी संकुचित और व्यापक, दोनों अर्थों में किया जाता था। सामान्यतः बच्चों को परिवारों में विद्यारम्भ संस्कार और गुरुकुलों में उपनयन संस्कार के बाद विभिन्न विषयों में दिए जाने वाले ज्ञान एवं काला–कौशल में प्रशिक्षण को शिक्षा कहा जाता था। यह शिक्षा का संकुचित अर्थ था। परन्तु जब शिष्य गुरुकुल शिक्षा पूरी कर लेते थे तो **समावर्तन समारोह** होता था और उस समारोह में गुरु शिष्यों को एक उपदेश यह भी देते थे कि स्वाध्याय में कभी प्रमाद (आलस्य) मत करना। इसका अर्थ है कि उस काल में जीवन भर स्वाध्याय द्वारा ज्ञानार्जन किया जाता था। यह शिक्षा का व्यापक अर्थ था।

शिक्षा के उद्देश्य एवं आदर्श

डॉ० अल्तेकर के शब्दों में–ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार, प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श थे।' आज अधिकतर विद्वान डॉ० अल्तेकर के इस विचार से सहमत है। परन्तु जब हम उस काल की शिक्षा के स्वरूप को गहराई से देखते–समझते हैं तो स्पष्ट होता है कि उस काल में शिक्षा को ज्ञान के पर्याय के रूप में लिया जाता था। इससे स्पष्ट है कि उस काल में शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास था। समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पाल और राष्ट्रीय संस्कृति के संरक्षण एवं विकास पर भी उस काल में विशेष बल दिया जाता था। मोक्ष की प्राप्ति तो उस काल में मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य माना जाता था और इसकी प्राप्ति के लिए शिक्षा द्वारा उसका आध्यात्मिक विकास किया जाता था। यदि उस समय के गुरुकुलों के नियमों और दिनचर्या पर ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि उस समय शिष्यों के स्वास्थ्य संरक्षण एवं संबर्द्धन और उनके नैतिक चारित्रिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता था। तब ये सब ही उस काल की शिक्षा के उद्देश्य थे। इन सब उद्देश्यों को हम आज की भाषा में निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं।

1. स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन–वैदिककालीन ऋषि और गुरुओं की मान्यता थी कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है और इस मोक्ष की प्राप्ति के लिए पहली आवश्यकता स्वस्थ शरीर और निर्मल मन की होती है। यही कारण है कि तब ऋषि आश्रमों और गुरुओं में शिष्यों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण और संवर्द्धन पर विशेष बल दिया जाता था। उन्हें उचित आहार–विहार एवं आचार–विचार की शिक्षा दी जाती थी। शारीरिक स्वस्थ्य के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए शिष्यों को प्रातः ब्रह्ममुहर्त में उठना होता था, दाँतून एवं स्नान करना होता था, व्यायाम करना होता था, सादा भोजन करना होता था, नियंत्रित दिनचर्या का पालन करना होता था और व्यसनों से दूर रहना होता था। उस काल में शिष्यों के लिए

पौष्टिक भोजन की व्यवस्था की जाती थी और शारीरिक श्रम पर विशेष बल दिया जाता था। इतना ही नहीं अपितु उनके रोगग्रस्त होने पर तुरन्त उपचार किया जाता था। शिष्यों के मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण एवं सवंर्द्धन के लिए उन्हें उचित आचार–विचार की ओर उन्मुख किया जाता थाः उन्हें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के पालन करने और काम, क्रोध, लोभ, मोह और पद से दूर रहने की शिक्षा दी जाती थी।

2. ज्ञान का विकास–यह वैदिक कालीन शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य था। तब ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र माना जाता था और यह माना जाता था कि ये दो नेत्र तो हमें केवल दृष्य जगत का ज्ञान भर कराते हैं परन्तु यह तीसरा नेत्र हमें दृष्य दोनों जगत का ज्ञान कराता है। यह हमें सत्य–असत्य का भेद स्पष्ट करता है, करणीय तथा अकरणीय कर्मों का भेद स्पष्ट करता है कि भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त करने का मार्ग स्पष्ट करता है। वैदिक काल में शिष्यों के भौतिक विकास हेतु उन्हें भाषा, व्याकरण, कृषि, पशुपालन और कला–कौशलों की शिक्षा दी जाती थी और सामाजिक क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता था और आध्यात्मिक विकास हेतु भाषा साहित्य धर्म और नीतिशास्त्र का ज्ञान कराया जाता था और धार्मिक क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता था।

3. सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का बोध एवं पालन–वैदिक कालीन शिक्षा का यह तीसरा मुख्य उद्देश्य था। उस समय शिष्यों को समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया जाता था और उनके पालन में प्रशिक्षित किया जाता था। गुरुकुल शिक्षा पूर्ण होने पर समावर्तन समारोह होता था। इस समारोह में गुरु शिष्यों को उपदेश देते थे। इन उपदेशों में एक उपदेश यह भी हेता था कि माता–पिता की सेवा करना, समाज की सेवार करना और गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों का पालन करना। गुरु शिष्यों को पितृऋण, गुरुऋण और देवऋण से उऋण होने के उपदेश देते थे।

4. संस्कृति का संरक्षण एवं विकास–हमारी संस्कृतिप्रारम्भ से हीधर्मप्रधान रही है। हमारे रहन–सहन एवं खान–पान का विधियाँ, रीति–रिवाज और मूल्य, सभी धर्म पर आधारित रहे हैं। वैदिक, काल में शिक्षा का एक उद्देश्य अपनी संस्कृति का संरक्षण और हस्तान्तरण था। उस काल में गुरुकुलों की सम्पूर्ण कार्य पद्धति धर्मप्रधान थी, संस्कारप्रधान थी। उस काल में शिष्यों का वेद मन्त्र रटाए जाते थे, संध्या–वन्दन की विधियाँ सिखाई जाती थीं और आश्रमानुसार कार्य करने का उपदेश दिया जाता था। उस पूरे काल में शिक्षा का एक ऐसा क्रम चला कि उसके प्रभाव से अनेक लोग गृहस्थ आश्रम के बाद बाणप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते थे और जंगलों में रहते हुए अध्ययन, चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करते थे और नए–नए तथ्यों की खोज करते थे। इनमें से कुछ लोग सन्यास आश्रम में प्रवेश करते थे और ध्यान एवं समाधि द्वारा मोक्ष प्राप्त करते थे। इससे इस देश की संस्कृति का संरक्षण और विकास हुआ। हमारे देश में उस समय संस्कृति की इतनी सुदृढ़ नीव रखी गई कि लाख झंझावटों के बाद वह आज तक जीवित है।

5. नैतिक एवं चारित्रिक विकास–वैदिक काल में चरित्र निर्माण से तात्पर्य मनुष्य को धर्मसमस्त आचरण में प्रशिक्षित करने से लिया जाता था; उसके आहार–विहार और आचार–विचार को धर्म के आधार पर उचित दिशा देने से लिया जाता था। उस समय बच्चों के नैतिक एवं चारित्रिक विकास के लिए उन्हें प्रारम्भ से ही धर्म और नीतिशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी; उन्हें ब्रह्मचर्य के पालन, इन्द्रियनिग्रह और आत्मनियन्त्रण की क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता था।

6. जीविकोपार्जन एवं कला कौशल की शिक्षा–कुछ विद्वानों का यह भ्रम निराधार है कि वैदिक काल में मनुष्यों को व्यावसायिक शिक्षा नहीं दी जाती थी। उस काल की शिक्षा के सन्दर्भ में अब ये तथ्य उजागर हुए हैं। कि प्रारम्भिक वैदिक काल में शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार कृषि पशुपालन एवं अन्य काल–कौशल को शिक्षा दी जाती थी। उस समय हमारा देश धन–धान्य से सम्पन्न था, लोग बहुत अच्छा जीवन जीते थे। परन्तु उत्तर वैदिक काल में कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था में बदल गई और परिणामस्वरूप लोगों को वर्णानुसार कर्म की शिक्षा दी जाने लगी–ब्राह्मणों को कर्मकाण्ड और अध्ययन–अध्यापन की, क्षत्रियों को शासन कार्य और युद्ध कौशल की और वैश्यों का कृषि, पशुपालन एवं व्यापार की। चिकित्सा विज्ञान की की शिक्षा इन तीनों वर्ण के बच्चे ले सकते थे। वैदिक काल के इस अन्तिम चरण में शुद्रों को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था, वे सेवा कार्य करते थे और इस कार्य को सिखाने के लिए गुरुकुलीय शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी।

इसकी शिक्षा वे अपने–अपने परिवारों में प्राप्त करते थे।

7. आध्यात्मिक उन्नति–वैदिक काल में शिक्षा का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य मनुष्य के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों को पवित्र बनाकर उन्हें चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनुष्यों को भाषा, साहित्य, धर्म और नीतिशास्त्र का ज्ञान कराया जाता था उनमें धार्मिक भावना और ईश्वर भक्ति की भावना का विकास किया जाता था और उन्हें इन्द्रियनिग्रह, धर्मानुकुल आचरण और सन्ध्या वन्दन एवं यज्ञादि क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता था।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

वैदिक कालीन शिक्षा का पाठ्यचर्या को दो आधारों पर देखा–समझा जा सकता है–एक उसके स्तरों के आधार पर और दूसरे उसकी प्रकृति के आधार पर। वैदिक काल में शिक्षा दो स्तरों में विभाजित थी–प्रारम्भिक और उच्च।

1. प्रारम्भिक शिक्षा की पाठ्यचर्या–वैदिक काल में प्रारम्भिक स्तर की पाठ्यचर्या में भाषा, व्याकरण, छन्दशास्त्र और गणना का सामान्य ज्ञान और सामाजिक व्यवहार एवं धार्मिक क्रियाओं के प्रशिक्षण को स्थान प्राप्त था। उत्तर वैदिक काल में उसमें नीतिप्रधान कहानियों को और जोड़ दिया गया। जो लोग अपने बच्चों को उच्च शिक्षा हेतु गुरुकुलों में प्रवेश दिलाना चाहते थे वे उन्हें संस्कृत भाषा और उसके का व्याकरण अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान कराते थे।

2. उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या–वैदिक कालीन उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–सामान्य और विशिष्ट। इस काल में उच्च स्तर पर संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण तथा धर्म एवं नीतिशास्त्र की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्हें नित्य व्यायाम करना होता था, गुरुकुल की व्यवस्था करनी होती थी और गुरुसेवा करनी होती थी। इसे सामान्य शिक्षा की संज्ञा दी जा सकती है। प्रारंभिक वैदिक काल में वैदिक साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों कर्मकाण्ड, ज्योतिर्वज्ञान, आयुर्विज्ञान, सैनिक शिक्षा, कृषि, पशुपालन, कला–कौशल, राजनीतिशास्त्र, भुगर्भशास्त्र और प्राणिशास्त्र की शिक्षा ऐच्छिक थी। उत्तर वैदिक काल में उच्च शिक्षा की इस पाठ्यचर्या में अनेक अन्य विषय सम्मिलित किए गए, थे जैसे– इतिहास, पुराण, नक्षत्र विद्या, न्यायशास्त्र, अर्थशास्त्र, देव विद्या, ब्रह्म विद्या और भृत विद्या। इसे विशिष्ट शिक्षा की संज्ञा दी जा सकती है। शिष्य इनमें से अपनी रुचि के कोई भी विषय अध्ययन करने के लिए स्वतन्त्र थे।

वैदिक कालीन शिक्षा की पाठ्यचर्या को उसकी प्रकृति के आधार पर निम्नलिखित दो रूपों में विभाजित किया जाता है–

1. अपरा (भौतिक) पाठ्यचर्या–इसके अन्तर्गत भाषा, व्याकरण, अंकशास्त्र, कृषि, पशुपालन, कला (संगीत एवं नृत्य) कौशल (कताई, बुनाई, रंगाई, काष्ठ कार्य, धातु कार्य एवं शिल्प) अर्थशास्त्र राजनीतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, प्राणिशास्त्र, सर्प विद्या, तर्कशास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान एवं नीति शिक्षा का अध्ययन और व्यायाम, गुरुकुल व्यवस्था और गुरु सेवा क्रियाएँ सम्मिलित थीं।

2. परा (आध्यात्मिक) पाठ्यचर्या–इसके अन्तर्गत वैदिक साहित्य (वेद, वेदांग एवं उपनिषद), धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र का अध्ययन और इन्द्रिय निग्रह,धर्मानुकुल आचरण, ईश्वर भांन, सन्ध्यावन्दन और यज्ञादि क्रियाओं का प्रशिक्षण सम्मलित था।

शिक्षण विधियाँ

वैदिक काल में शिक्षण सामान्यतः मौखिक रूप से होता था और प्रायः प्रश्नोत्तर, शंका–समाधान, व्याख्यान और वाद–विवाद द्वारा होता था। उस समय भाषा की शिक्षा के लिए अनुकरण विधि और कला–कौशल की शिक्षा के लिए प्रदर्शन एवं अभ्यास विधियों का प्रयोग किया जाता था। उपनिषदकारों ने शिक्षण की एक बहुत प्रभावी विधि का विकास किया था जिसे श्रवण, मनन और निदिध्यासन विधि कहते हैं। उत्तर वैदिक काल में छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए कहानी विधि और उच्च स्तर के शिष्यों के लिए तर्क विधि का विकास किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल के गुरु मनोविज्ञान के पंडित थे। इस सन्दर्भ से यथर्ववेद का एक सूत्र उद्धरणीय है–वाचस्पते देवन यह। वसोस्पते न रमयः।। अर्थात गुरु शिष्य को देवीय मन से पढ़ाए और इस प्रकार पढ़ाए कि उसमें स्मरणीयता रहे। साफ जाहिर है कि उस समय उपरोक्त सब विधियों का प्रयोग कुछ अपने ढंग से होता था अतः यहाँ इनके प्राचीन रूप को स्पष्ट करना आवश्यक है।

1. अनुकरण, आवृत्ति एवं कण्ठस्थ विधि–अनुकरण विधि सीखने की स्वाभाविक विधि है। वैदिक काल में प्रारम्भिक स्तर पर भाषा और व्यवहार की शिक्षा प्रायः इसी विधि से दी जाती थी। उच्च स्तर पर भी इसका प्रयोग होता था–गुरु शिष्यों के सम्मुख वेद मन्त्रों का उच्चारण करते

थे, शिष्य उनका अनुकरण करते थे, उन्हें बार–बार उच्चारित करते थे और इस प्रकार उन्हें कण्ठस्थ करते थे।

2. व्याख्या एवं दृष्टान्त विधि–वैदिक काल में शिष्यों को व्याकरण का कोई मन्त्र कण्ठस्थ कराने के बाद गुरु उसकी व्याख्या करते थे, उसका अर्थ एवं भाव स्पष्ट करते थे और उसके अर्थ एवं भाव को स्पष्ट करने के लिए उपमा, रूपक और दृष्टान्तों का प्रयोग करते थे।

3. कथन, प्रदर्शन एवं अभ्यास विधि–वैदिक काल में कृषि, पशुपालन, कला–कौशल सैन्य शिक्षा और आयुर्विज्ञान आदि क्रियाप्रधान विषयों की शिक्षा कथन, प्रदर्शन और अभ्यास विधि से दी जाती थी। गुरु सर्वप्रथम क्रिया के सम्पादन की विधि बताते थे और फिर उसे स्वयं करके दिखाते थे; शिष्य उनका अनुकरण कर यथा क्रिया का अभ्यास करते थे और धीरे–धीरे उसमें दक्षता प्राप्त करते थे।

4. प्रश्नोत्तर, वाद–विवाद और शास्त्रार्थ विधि–उत्तर वैदिक काल में उपनिषदों की शैली के आधार पर प्रशनोत्तर, वाद–विवाद और शास्त्रार्थ विधियों का विकास हुआ। प्रारम्भिक वैदिक काल में गुरु उपदेश देते थे, व्याख्यान देते थे और शिष्य शान्तिपूर्वक सुनते थे। उत्तर वैदिक काल में शिष्य अपनी शंका प्रस्तुत करते थे, गुरु उनका समाधान करते थे। उच्च शिक्षा में उच्च स्तर के शिष्यों और गुरुओं के बीच वाद–विवाद भी होता था। अति गूढ़ विषयों पर चर्चा हेतु अधिकारी विद्वानों के सम्मेलन भी बुलाए जाते थे, उनके बीच शास्त्रार्थ होता था, शिष्य इस सबको सुनते थे और अपने तत्सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि करते थे।

5. श्रवण, मनन, निदिध्यासन विधि–यह विधि भी उपनिषदकारों की देन है। उस काल में गुरु जो भी व्याख्यान देते थे, वेद मन्त्रों आदि की जो भी व्याख्या करते थे, धर्म, दर्शन एवं अन्य विषयों के सम्बन्ध में जो कुछ जानकारी देते थे, शिष्य उनको ध्यानपूर्वक सुनते थे, उसके बाद उस पर मनन करते थे, चिन्तन करते थे और जो तथ्य एवं सत्य उनकी पकड़ में आता था उस पर नियमित रूप से अभ्यास करते थे।

6. तर्क विधि–उत्तर वैदिक काल में तर्कशास्त्र जैसे विषयों के शिक्षण हेतु तर्क विधि का विकास हुआ। उस समय इस विधि के पाँच पद थे–प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, अनुप्रयोग और निगमन।

7. कहानी विधि–उत्तर वैदिक काल में **आचार्य विष्णु शर्मा** ने राजकुमारों को नीति की शिक्षा देने के लिए कहानियों की रचना की। ये कहानियाँ पंचतन्त्र और तिहोपदेश के नाम से संग्रहीत हैं। कहानी सुनाने के बाद आचार्य शिष्यों से प्रश्न पूछते थे। इन प्रश्नों में अन्तिम प्रश्न यह होता था कि इस कहानी से आपको क्या शिक्षा मिलती है। इस प्रकार यह कहानी विधि आज की कहानी विधि से कुछभिन्न थी।

विशेष

वैदिक कालीन शिक्षण विधियों के सन्दर्भ में दो तथ्य उल्लेखनीय हैं–

1. शिक्षा का माध्यम संस्कृत–वैदिक काल में सामान्य मनुष्य की संस्कृत भाषा और शिक्षित मनुष्य की संस्कृत भाषा में अन्तर था और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विशुद्ध संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था, उस काल में विशुद्ध संस्कृत ही शिक्षा का माध्यम थी।

2. नायकीय पद्धति–उत्तर वैदिक काल में जब गुरुकुलों में छात्रों की संख्या बढ़ी तो गुरु ब्राह्मण वर्ण के वरिष्ठ, प्रखर बुद्धि, योग्य और सक्षम छात्रों को नायक बनाने लगे। ये नायक कनिष्ठ छात्रों को भाषा, साहित्य धर्म और नीतिशास्त्र आदि विषयों का ज्ञान कराते थे। इससे दो लाभ हुए। पहला यह कि गुरुओं का कार्य भार कम हुआ और दूसरा यह कि ब्राह्मण वर्ग के छात्रों को अपने अध्ययन काल में ही अध्यापन कार्य का प्रशिक्षण मिलने लगा।

अनुशासन

प्रारम्भिक वैदिक काल में अनुशासन से तात्पर्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक संयम से लिया जाता था। उस काल में शारीरिक संयम से तात्पर्य था–ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, शृंगार न करना, सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग न करना, नृत्य एवं संगीत में आनन्द न लेना, मादक पदार्थों का प्रयोग न करना, जुआ न खेलना, गाय न मारना, झूठ न बोलना और चुगली न करना, मानसिक संयम से तात्पर्य था–इन्द्रियनिग्रह, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन और काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद से दूर रहना, और आत्मिक संयम से तात्पर्य था–आत्मा के स्वरूप को पहचनाना, सबमें एकात्म भाव देखना और सबके कल्याण के लिए कार्य करना। परन्तु उत्तर वैदिक काल में शिष्यों द्वारा गुरुओं के आदेशों और गुरुकुलों के नियमों के पालन को ही अनुशासन माना जाने लगा और जो शिष्य इनका पालन नहीं करते थे उन्हें दण्ड दिया जाता था।

परन्तु शारीरिक दण्ड विशेष परिस्थितियों में ही दिया जाता था। उस काल में मनु, गौतम और विष्णु शर्मा तो शारीरिक दण्ड देने के पक्ष में ही नहीं थे, हाँ यज्ञावल्क्य ने कुछ विशेष परिस्थितियों में शारीरिक दण्ड देने के लिए स्वीकृत अवश्य दी थी।

गुरू (शिक्षक)

वैदिक काल में अति विद्वान, स्वाध्यायी, धर्मपरायण और सच्चरित्र व्यक्ति ही गुरु हो सकते थे। गुरू अतिज्ञानी के साथ–साथ अति संयमी भी होते थे। उस समय इन्हें समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। ये देव रूप में प्रतिष्ठित थे इन्हें कहा जाता था जिसकी बुद्धि ही धन है सत्य को जानने वाला और विश्ववेदा आदि विशेषणों से सम्बोधित किया जाता था। ये अपने गुरुओं के पूर्ण स्वामी होते थे, परन्तु पूर्ण स्वामित्व के साथ पूर्ण उत्तरदायित्व जुड़ था। ये अपने गुरुओं को सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते थे। ये अपने शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था करते थे, उनके स्वास्थ्य की देखभाल करते थे और उनके सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्न करते थे।

शिष्य(शिक्षार्थी)

वैदिक काल में उन्हीं बच्चों को गुरुकुलों में प्रवेश मिलता था जो अविवाहित होते थे। उस काल में शिष्यों को ब्रह्मचारी कहा जाता था। ये ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते थे, सात्विक भोजन करते थे, सादा वस्त्र पहनते थे और व्यसनों से दूर रहते थे। उस काल में शिष्य अध्ययन के साथ–साथ गुरुकुलों की व्यवस्था भी करते थे। गुरुकुलों के नियमों का पालन और गुरु सेवा इनका परम कर्त्तव्य होता था। इनकी दिनचर्या बहुत नियमित होती थी। सभी शिष्य गुरु के जागने से पहले ब्रह्मामुहूर्त में उठते थे, मल विसर्जन और दाँतून के बाद स्नान करते थे, व्यायाम करते थे, गुरुगृह की व्यवस्था करते थे, नित्य पूजा एवं हवन आदि करते थे और इसके बाद अध्ययन करते थे। सूर्य डूबने से पहले संध्या भोजन और रात्रि में गुरु सेवा और गुरु की सेवा के बाद रात्रि विश्राम करते थे।

गुरु–शिष्य सम्बन्ध

वैदिक काल में गुरु और शिष्यों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध थे। गुरु शिष्यों को पुत्रवत मानते थे और शिष्य गुरुओं को पितामुल्य मानते थे। ऊपर से प्रेम बरसता था और नीचे से श्रद्धा उमड़ती थी।वैदिक काल में गुरुकुलों की व्यवस्था गुरु और शिष्य दोनों संयुक्त रूप से करते थे। वह व्यवस्था कार्य विभाजन द्वारा बहुत सुचारू रूप से होती थी। ऐसा अनुमान है कि उस काल में सभी शिष्यों को सभी कार्य बारी–बारी से करने होते थे, शिष्यों के साथ किसी प्रकार का भेद नहीं बरता जाता था। यहाँ गुरुओं के शिष्यों के प्रति और शिष्यों के गुरुओं के प्रति उत्तरदायित्वों एवं कार्यों का वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है।

गुरुओं के शिष्यों के प्रति कर्त्तव्य–वैदिक काल में गुरु शिष्यों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी होते थे। वे शिष्यों के प्रति निम्नलिखित उत्तरदयित्वों एवं कर्त्तव्यों का निर्वाह करते थे–

1. शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था करना।
2. शिष्यों के स्वास्थ्य की देखभाल करना, उनके अस्वस्थ होने पर उपचार की व्यवस्था करना।
3. शिष्यों को भाषा, धर्म और नीतिशास्त्र का ज्ञान अनिवार्य रूप से कराना।
4. शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार अथवा वर्णानुसार विशिष्ट विषयों एंव क्रियाओं की शिक्षा देना।
5. शिष्यों को सदाचरण की शिक्षा देना और उनका चरित्र निर्माण करना।
6. शिष्यों को करणीय कर्मों की ओर उन्मुख करना और अकरणीय कर्मों से रोकना।
7. शिष्यों का सर्वांगीण विकास करना।
8. शिक्षा पूरी होने पर शिष्यों को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा देना और उनका मार्गदर्शन करना।
9. शिक्षोपरान्त भी शिष्यों की शंकाओं का समाधान करना, उनका मार्गदर्शन करना।

शिष्यों के गुरुओं के प्रति कर्त्तव्य–वैदिक काल में शिष्य गुरुओं के प्रति पूर्णरूप से समर्पित होते थे। वे गुरुओं के प्रति निम्नलिखित उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का पालन करते थे–

1. गुरुकुलों की सफाई करना, उसकी पूर्ण व्यवस्था करना।
2. गुरुगृह की सफाई करना, गुरु के स्नान एवं पूजा–पाठ की व्यवस्था करना।
3. गुरु एवं गुरुकुलवासियों के लिए भिक्षा माँगना।
4. गुरु एवं गुरुकुलवासियों के भोजन की व्यवस्था करना।
5. गुरुओं के रात्रि विश्राम की व्यवस्था करना।
6. गुरुओं के सोने से पहले उनके पैर दबाना।
7. गुरुओं के आदेशों का पूर्ण निष्ठा से पालन करना।

8. शिक्षा पूरी होने पर अपनी सामर्थ्यानुसार गुरु दक्षिणा देना।
9. गुरुकुल छोड़ने के बाद भी गुरुओं का आदर करना, उन्हें सम्मान देना और उनके उपदेशों का पालन करना।

शिक्षण संस्थाएँ– गुरुकुल

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों और उच्च शिक्षा की व्यवस्था मुख्य रूप से गुरुकुलों में होती थी। यहाँ वैदिक कालीन गुरुकुलों का वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है।

गुरुकुलों की स्थिति और स्वरूप–प्रारम्भिक वैदिक काल में गुरुकुल जन कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में किसी नदी अथवा अपने झरने के किनारे स्थित होते थे परन्तु उत्तर वैदिक काल में बड़े–बड़े गाँवों और तीर्थ स्थानों के निकट स्थापित होने लगे। उस काल में गुरुकुल आवासीय होते थे, इनके अपने नियम दोते थे और अपनी कार्य पद्धति होती थी।

वैदिक काल में अनेक प्रकार के गुरुकुल होने का उल्लेख मिलता है। जिन गुरुकुलों में केवल भाषा और साहित्य को उच्च शिक्षा दी जानी थी उन्हें **टोल** कहते थे; जिनमें भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन और नीतिशस्त्र का विशेष ज्ञान कराया जाता था उन्हें **घटिका** कहते थे; जिनमें किसी वेद के किसी अंग विशेष का विशिष्ठ ज्ञान कराया जाता था उन्हें**चरण** कहते थे और जिनमें चारों शास्त्रों (दर्शन, पुराण, व्याकरण और राजनियमों) की शिक्षा दी जाती थी उन्हें **चतुत्पथी** कहते थे।

गुरुकुलों में छात्रों का प्रवेश और उपनयन संस्कार–वैदिक काल में गुरुकुलों में भिन्न–भिन्न वर्ण के बच्चों पर प्रवेश भिन्न–भिन्न आयु पर होता था–ब्राह्मण वर्ण के बच्चों की 8 वर्ष की आयुपर, क्षत्रिय वर्ण के बच्चों को 10 वर्ष की आयु पर और वैश्य वर्ण के बच्चों का 12 वर्ष की आयु पर। प्रवेश के समय सभी बच्चों का **उपनयन संस्कार** होता था। उपनयन का अर्थ है समीप लाना अर्थात् बच्चे को गुरु के सम्मुख उपस्थित करना। सर्वप्रथम बच्चे को घर के वस्त्र उतार कर ब्रह्मचारी के वस्त्र पहनाए जाते थे, उसे मेखला धारणा कराई जाती थी, उसके हाथ में समिधा दी जाती थी और गुरु के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। गुरु बच्चे से प्रश्न करता था–'कस्य ब्रह्मचारी असि' अर्थात तुम किसके शिष्य हो। बच्चा उत्तर देता था– 'भवतः' अर्थात् आपका। इसके बाद बच्चे को यज्ञवेदी के सामने आसन पर बैठाया जाता था, वेद मन्त्रों के देव आराधना की जाती थी और बच्चे को यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण कराया जाता था। इसके उपरान्त बच्चा गुरुकुल के नियमों और ब्रह्मचर्यव्रत के पालन का वचन देता था और गुरु उसे गुरुकुल के शिष्य के रूप में स्वीकार करता था और उसके आवास भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था करने और उसके सर्वांगीण विकास करने का उत्तरदायित्व स्वीकार करता था।

गुरुकुलों की दिनचर्या एवं शिक्षण कार्य–वैदिक काल में गुरुकुलों की दिनचर्या बड़ी नियमित एवं कठोर होती थी। गुरु और शिष्य दोनों प्रातः ब्रह्ममुहुर्त में उठते थे, शिष्य नित्यकर्म (शौच, दाँतून, स्नान) से निवृत्त हो कार्य विभाजन के अनुसार गुरु के स्नानादि एवं पूजा–पाठ की व्यवस्था करते थे, गुरुगृह और गुरुकुल की व्यवस्था करते थे, भिक्षा के लिए जाते थे, जंगल से लकड़ी लाते थे, जल स्रोतों से जल लाते थे और अन्य कार्य व्यवस्था करते थे, इसके बाद शिक्षण कार्य चलता था जो मध्याह तक होता था।

वैदिक काल में गुरुकुलों में आज की भाँति शिक्षण कक्ष उपलब्ध नहीं थे। शिक्षण कार्य खुले मैदानों में पेड़ों की छाया में होता था। मध्याह भोजन के बाद गुरु–शिष्य दोनों विश्राम करते थे। विश्राम के बाद पुनः शिक्षण कार्य होता था। इसके बाद शिष्य पुनः भोजन की तैयारी और दूध दोहन आदि कार्यों में लग जाते थे। सूर्य डूबने से पहले संध्या भोजन होता था। रात्रि में बारी–बारी से गुरुओं के पैर दबाते थे और उनके सोने के बाद स्वयं सोते थे।

परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ–वैदिक काल में आज की तरह की परीक्षाएँ नहीं होती थीं। सर्वप्रथम ते गुरु ही मौखिक रूप से प्रश्न पूछ कर यह निर्णय करते थे कि किसी शिष्य ने यथा ज्ञान प्राप्त कर लिया है अथवा नहीं। इसके बाद उन्हें विद्वानों की सभा में उपस्थित किया जाता था। ये विद्वान इन छात्रों से प्रश्न पूछते थे और सन्तुष्ट होने पर उन्हें सफल घोषित करते थे।

वैदिक काल में सफल छात्रों को कोई प्रमाणपत्र नहीं दिए जाते थे, उनकी योग्यता ही उनका प्रमाणपत्र होती थी। परन्तु जो छात्र गुरुकुलों का 12 वर्षीय सामान्य पाठयक्रम अथवा किसी एक वेद का अध्ययन पूरा कर लेते थे उन्हें **स्नातक,** जो 24 वर्षीय पाठ्यक्रम (किन्हीं दो वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें वसु, जो 36 वर्षीय पाठ्यक्रम (किन्हीं तीन वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें रूद्र और जो 48 वर्षीय

पाठ्यक्रम (चारों वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें **आदित्य** कहा जाता था।

समावर्तन समारोह–वैदिक काल में शिष्यों की गुरुकुलीय शिक्षा पूरी होने पर समावर्तन समारोह होता था। समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है–घर लौटना। समावर्तन समारोह से सर्वप्रथम छात्रों को ब्रह्मचारी वस्त्र उतार कर गृहस्थ वस्त्र पहनाए जाते थे। इसके बाद गुरु उन्हें यज्ञ वेदी के सामने बैठाते थे। वेद मन्त्रों से देवताओं की आराधना होती थी। इसके बाद गुरु शिष्यों को उपदेश (दीक्षान्त भाषण) देते थे। वे उन्हें गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्य पालन, समाज सेवा और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन का उपदेश देते थे और अध्ययन में कभी प्रमाद (आलस्य) न करने का उपदेश देते थे। वे उन्हें पिताऋण, गुरुऋण और देवऋण से उऋण होने का उपदेश देते थे। तैत्तिरीय उपनिषद में इस प्रकार के दीक्षान्त भाषण का उल्लेख है। आज के अधिकतर भारतीय विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त समारोहों में तैतिरीय उपनिषदीय दीक्षान्त उपदेश ही दिए जाते हैं। उस काल में दीक्षान्त उपदेश देने के बाद गुरू शिष्यों को गृहस्थ जीवन में प्रवेश की आज्ञा प्रदान करते थे और उन्हें आशीर्वाद देकर गुरुकुल से घर के लिए विदा करते थे।

विशेष

वैदिक काल में उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुलों के अतिरिक्त कुल अन्य अभिकरणों द्वारा भी होती थी। इनमें ऋषिआश्रम, परिषद, सम्मेलन और परिब्राजाचार्य मुख्य हैं। यहाँ इन सबका वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है।

ऋषिआश्रम–वैदिक काल में आध्यात्मिक ज्ञान के विशषज्ञों को ऋषि कहा जाता था। ये प्रायः निर्जन स्थानों में कुटिया बनाकर रहते थे। इनके इन आश्रम स्थानों को ऋषिआश्रम कहा जाता था। कुछ ऋषिआश्रमों में तो गुरुकुलों की भाँति उच्च शिक्षा की व्यवस्था होती थी, कुछ में दर्शन के गृह तत्वों का ज्ञान कराया जाता था और कुछ ऐसे ऋषिआश्रम थे जिनमें केवल उच्च आध्यात्मिक ज्ञान ही दिया जाता था। कुछ ऋषियों के पास तो उच्च कोटि के विद्वान भी अपनी शंकाओं कासमाधान प्राप्त करने जाते थे।

परिषद–वैदिक काल में कुछ स्थानों पर विद्वानों की स्थानीय परिषदों का गठन भी किया जाता था। प्रत्येक परिषद में प्रायः दस सदस्य होते थे। इनमें चार सदस्य एक–एक के ज्ञाता, तीन सदस्य एक–एक शास्त्र के ज्ञाता, एक ब्रह्मचारी, एक गृहस्थ और एक वाणप्रस्थी होता था। इन परिषदों की बैठक निश्चित समय पर होती थी। इन बैठकों में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक समस्याओं पर विचार होता था और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान होता था। उच्च शिक्षा के छात्र इन परिषदों में अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करते थे।

सम्मेलन–वैदिक काल में कुछ राजाओं द्वारा देश के मूर्धन्य विद्वानों के सम्मेलन भी बुलाए जाते थे। इन सम्मेलनों में प्रायः धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ होता था, शंका–समाधान होता था। उच्च शिक्षा के केन्द्र गुरुकुलों के गुरु और शिष्य इन सम्मेलनों में उपस्थित होते थे। इन सम्मेलनों में उनका ज्ञानवर्द्धन होता था, उनकी शंकाओं का समाधान होता था। इस अर्थ में ये भी उच्च शिक्षा था, अधिकरण माने जाते हैं।

परिव्राजाचार्य–वैदिक काल में कुछ आचार्य परिभ्रमण करते थे और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर लोगों को सामान्यतः धर्म और नीति की शिक्षा देते थे। इन्हें परव्राजाचार्य (भ्रमण करने वाले आचार्य) कहते थे। ये अपने में उच्च शिक्षा की चलती–फिरती संस्थाएँ थे। ये सामान्य शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को उच्च शिक्षा देते थे और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की शंकाओं का समाधान करते थे। इनकेमाध्यम से उच्च शिक्षा शिक्षार्थियों के द्वार पर पहुँचती थी।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के गुण

यदि हम वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली को अपने देश भारत की वर्तमान परिस्थितियों, आवश्यकताओं, सम्भावनाओं और आकांक्षाओं की दृष्टि से देखें–समझें तो उसमें निम्नलिखित गुण स्पष्ट होंगे जिन्हें आज भी ग्रहण करना चाहिए।

1. निःशुल्क शिक्षा–वैदिक काल में गुरुकुलों में शिष्यों से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उस समय शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था भी निःशुल्क होती थी। इस व्यय की पूर्ति राजा एवं धनी लोगों से प्राप्त दान, भिक्षाटन और गुरुदक्षिणा द्वारा होती थीं। आज संसार के सभी देशों में एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा निःशुल्क है, हमारे देश भारत में भी।

2. शिक्षा का व्यापक अर्थ–वैदिक काल में छात्रों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे गुरुकुल शिक्षा पूरी करने के बाद भी स्वाध्याय में कभी आलस्य न करें। इस काल में लोग जीवन में अन्य कार्यों के सम्पादन के साथ–साथ निरन्तर जनार्जन करते थे। गृहस्थाश्रम के बाद वाणप्रस्थाश्रम में

प्रवेश करने के बाद तो लोग अध्ययन और चिन्तन ही किया करते थे और समाज को अपने अध्ययन एवं अनुभवों से लाभ पहुँचाया करते थे। आज संसार के प्रायः सभी देशों में सतत् शिक्षा की व्यवस्था है, हमारे देश भारत में भी।

3. शिक्षा के व्यापक उद्देश्य–वैदिक काल में शिक्षा के उद्देश्य अति व्यापक थे। उस काल में शिक्षा द्वारा मनुष्यों का शारीरिक एवं मानसिक विकास किया जाता था, उन्हें सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को बोध कराया जाता था, उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास किा जाता था, उन्हें कर्म (व्यवसाय) की शिक्षा दी जाती थी और इस सबके साथ–साथ उनका आध्यात्मिक विकास किया जाता था। हाँ, यह बात अवश्य है कि उस समय सर्वाधिक बल ज्ञान के विकास, चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक विकास पर दिया जाता था। आज की परिस्थितियों में भी हमारी शिक्षा के ये सब उद्देश्य होने चाहिए और हैं भी। साथ ही हमें शिक्षा द्वारा बच्चों के नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर सर्वाधिक बल देना चाहिए। समय की आवश्यकतानुसार शिक्षा द्वारा बच्चों में राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का विकास भी करना चाहिए और उन्हें राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर उन्मुख करना चाहिए।

4. शिक्षा की व्यापक पाठ्चर्या–वैदिक काल में मनुष्य के तीनों पक्षों प्राकृति, सामाजिक और आध्यात्मिक के विकास पर बल दिया जाता था और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या में अपरा (भौतिक) एवं परा (आध्यात्मिक) दोनों प्रकार के विषयों एवं क्रियाओं को स्थान दिया जाता था। हाँ, यह बात अवश्य है कि उस समय सर्वाधिक बल भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन और नीतिशास्त्र की शिक्षा पर दिया जाता था और ये उस समय गुरुकुलीय शिक्षा के अनिवार्य विषय थे। आज हमारे देश में उच्च शिक्षा की पाठृयचर्या अतिव्यापक है परन्तु वह बहुपक्षीय नहीं है, मनुष्य के प्राकृतिक सामाजिक और अध्यात्मिक तीनों पक्षों का विकास नहीं करती। शिक्षाशास्त्रियों और शिक्षा नियोजकों को अब इस ओर ध्यान देना चाहिए।

5. विशिष्टीकरण–हमारे देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्टकीरण का शुभारम्भ वैदिक काल में ही हो गया था। हाँ, यह बात सत्य है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में तो व यह विशिष्टीकरण छात्रों की योग्यता के आधार पर होता था परन्तु उत्तर वैदिक काल में यह छात्रों के वर्ण में आधार पर होने लगा था। आज हमारे देश में ही नहीं, संसार के सभी देशों में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्टकीरण का क्षेत्र अतिव्यापक हो गया है और छात्रों को उनकी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार विशिष्ट शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने के अवसर दिए जाते हैं। हमारे देश में इस क्षेत्र में शैक्षिक अवसरों की समानता का नारा बुलन्द है।

6. उत्तम शिक्षण विधियों का विकास–वैदिक काल में गुरुओं ने शिक्षण की अनेक उत्तम विधियों – अनुरकरण, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, विचार–विमर्श, श्रवण–मनन–निदिध्यासन, तर्क, प्रयोग एवं अभ्यास, नाटक और कहानी का विकास किया था। इस काल में शिक्षण को रोचक और प्रभावी बनाने पर विशेष बल दिया जाता था। यूँ आज मनोविज्ञान के ज्ञान और विज्ञान के आविष्कारों की सहायता से अनेक अन्य उत्तम शिक्षण–विधियों का विकास हुआ है परन्तु वैदिक कालीन उपरोक्त विधियों का महत्त्व आज भी है और सदैव रहेगा। हमें उनका आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए।

7. गुरु एवं शिष्यों का अनुशासित जीवन–वैदिक काल में गुरुकुलों के नियम बड़े कठोर होते थे और गुरु एवं शिष्य दोनों ही इनका पालन करते थे। उस काल में गुरु बहुत अनुशासित जीवन जीते थे, उनकी कथनी और करनी समान होती थी। गुरुओं के आदर्श आहार–विहार और आचार–विचार का शिष्यों पर सीधा प्रभाव पड़ता था और वे भी उचित आहार–विहार और उचित आचार–विचार का पालन करते थे। गुरु और शिष्य दोनों सादा जीवन जीते थे, अनुशासित जीवन जीते थे। सच बात यह है कि आचरण की शिक्षा आचरण द्वारा ही दी जा सकती है। आज हमारे देश में आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक स्वयं आदर्श आचरण करें, तभी शिष्य आदर्श आचरण करेंगे।

8. गुरु–शिष्यों के बीच मधुर सम्बन्ध–वैदिक काल में गुरु–शिष्यों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध थे। ऊपर से प्रेम बरसता था और नीचे से श्रद्धा उमड़ती थी। गुरु शिष्यों की पूरी देख–भाल करते थे और अनेक सर्वांगीण विकास के लिए कठोर परिश्रम करते थे और शिष्य गुरुओं का आदर करते थे, उनके आदेशों का पालन करते थे और उनकी सेवा करते थे। सच बात यह है कि जब तक शिष्यों की गुरुओं में श्रद्धा नहीं होती, वे उनसे कुछ सीख नहीं सकते और जब तक गुरु शिष्यों के प्रति समर्पित नहीं हो, वे शिष्यों को कुछ सिखा नहीं सकते। आज के इस

भौतिकवादी भीड़ भरे समाज में वैदिक कालीन गुरु–शिष्य सम्बन्ध तो स्थापित नहीं किए जा सकते, परन्तु यह अपेक्षा तो की जा सकती है कि गुरु शिष्यों के प्रति समर्पित हो उनके विकास के लिए प्रयत्नशील हों और शिष्य गुरुओं का आदर करें। उसी स्थिति में शिक्षा की प्रक्रिया सुचारु रूप से चल सकती है।

9. गुरुकुलों का उत्तम पर्यावरण और संस्कारप्रधान जीवन पद्धति–वैदिक काल में गुरुकुल प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थित होते थे। यहाँ शुद्ध वायु और शुद्ध जल प्राप्त होता था और वातावरण एकदम शान्त होता था। इन गुरुकुलों की दूसरी विशेषता थी संस्कारप्रधान जीवन पद्धति। इनमें प्रवेश के समय बच्चों का उपनयन संस्कार होता था। इस संस्कार से बच्चों की मानसिकी में परिवर्तन होता था, वे ब्रह्मचर्य जीवन को सहज में स्वीकार करते थे और संयमित जीवन जीते थे। नियमित रूप से धार्मिक कृत्यों के सम्पादन से उनमें उच्च संस्कारों का निर्माण होता था। शिक्षा पूरी होने पर समावर्तन समारोह होता था। इस समारोह में गुरु शिष्यों को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा देते थे और उन्हें कर्त्तव्य पालन का उपदेश देते थे। आज की परिस्थितियों में हमें वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली से इतना तो ग्रहण करना ही चाहिए कि हमारे विद्यालय प्रदूषण रहित स्थानों पर स्थित हों, उनमें पेड़–पौधे हों, फुलवारी हो, उनके आसपास किसी प्रकार का शोर न हो और ध्वनि प्रदूषण न हो। यदि विद्यालयों की कार्य प्रणाली और दिनचर्या को संस्कारप्रधान एवं मुल्यआधारित बनाया जा सके तो फिर सोने में सुहागा समझिए।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के दोष

कुछ विद्वान वैदिक शिक्षा प्रणाली में गुण ही गुण देखते हैं। यह उनका वैदिक शिक्षा के प्रति मोह ही कहा जाएगा। यह बात तो सत्य है कि यह उस समय संसार की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्रणाली थी परन्तु आज की दृष्टि से उसमें अनेक दोष भी थे और न दोषों से हमें अपनी आज की शिक्षा प्रणाली को दूर रखना चाहिए। वैदिक कालीन शिक्षा के दोषों को हम निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं।

1. शिक्षा राज्य का उत्तरदायित्व नहीं–वैदिक काल में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व नहीं था, यह व्यक्तिगत नियन्त्रण में थी, उस पर गुरुओं का पूर्ण अधिकार था। परिणामतः शिक्षा का कोई सर्वमान्य स्वरूप विकसित नहीं हो सका, जन शिक्षा का सम्प्रत्यय विकसित नहीं हो सका और स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी। आज की परिस्थितियों में किसी भी देश में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व माना जाता है, हमारे देश भारत में भी। आज सबके लिए शिक्षा के समान अवसर का नारा बुलन्द है।

2. आय के अनिश्चित स्रोत एवं भिक्षाटन–वैदिक काल में गुरुकुलों को आज भी भाँति राज्य से कोई निश्चित आर्थिक अनुदान नहीं मिलता था, ये राजा, महाराजा और धनी लोगों की कृपा पर निर्भर करते थे। यही कारण है कि उस काल में कुछ गुरुओं की स्थिति अति दयनीय थी। उस काल में सभी गुरुकुलों के छात्र समाज में भिक्षा माँगने जाते थे, यह उस समय के गुरुकुलों की आय का एक मुख्य स्रोत था। कुछ विद्वानों का मत है कि भिक्षाटन से दो लाभ होते थे–एक तो गुरुकुलों की व्यवस्था चलती थी और दूसरे छात्रों में विनम्रता आती थी। परन्तु आज की परिस्थितियों में भिक्षाटनसे न तो विद्यालयों की व्यवस्था की जा सकती है और न छात्रों में विनम्रता विकसित की जा सकती है। इससे तो आज के छात्रों से हीन भावना का ही विकास होगा। यही कारण है कि आज शिक्षा की व्यवस्था के लिए वित्त व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व माना जाता है। हमारी सरकार को भी अपने इस उत्तरदायित्व को समझना चाहिए।

3. शिक्षा की अमनोवैज्ञानिक संरचना–वैदिक काल में शिक्षा केवल दो स्तरों में विभाजित थी–प्राथमिक एवं उच्च; और उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या बाल एवं किशोरों के मनोविज्ञान के अनुकूल नहीं थी। आज की परिस्थितियों के लिए तो वह एकदम अनुपयुक्त हैं। आज तो मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को उजागर किया है कि शिशु, बाल, किशोर और युवाओं के मनोविज्ञान में बहुत अन्तर होता है अतः शिक्षा को शिशु, बाल, किशोर और युवाओं के मनोविज्ञान के आधार पर शिशु शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, उच्च प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा आदि स्तरों में विभाजित करना चाहिए और उच्च शिक्षा को भी भिन्न–भिन्न वर्गों–कला, वाणिज्य, कृषि, विज्ञान, तकनीकी आदि में विभाजित करना चाहिए।

4. अव्यवस्थित पाठ्यचया–वैदिक काल में सभी गुरुकुलों की पाठयचर्या एक समान नहीं थी, भिन्न–भिन्न गुरुकुलों की पाठ्यचर्या भिन्न–भिन्न थी। उस समय यह धारणा थी कि शिष्यों को

जितना अधिक ज्ञान करा दिया जाएगा वे जीवन में उतने ही अधिक सफल होंगे। परन्तु इस ज्ञान के स्वरूप के विषय में गुरु एकमत नहीं थे। आज जब शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व हो गया है किसी भी स्तर की शिक्षा की पाठ्यचर्या पूर्व निश्चित होनी आवश्यक है। आज सभी राज्य ऐसा ही प्रयत्न करते हैं, भारत राज्य भी।

5. रटने पर अधिक बल–वैदिक काल में मुद्रण कला का विकास नहीं हुआ था। उस स्मरण द्वारा सूरक्षित रखा जाता था; गुरुकुलों में भी शिष्यों को समस्त ज्ञान कण्ठस्थ करना पड़ता था। उस काल में उसी व्यक्ति को योग्य माना जाता था कि जिसे धर्म, दर्शन, नीतिशास्त्र और अन्य अनुशासनों एवं क्रियाओं सम्बन्धी श्लोक कण्ठस्थ होते थे। आज ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में इतना अधिक विकास हो चुका है कि न तो उसे सूत्र रूप में संजोया–पिरोया जा सकता है और न उसे कण्ठस्थ किया जा सकता है। वैसे भी आज स्मरण पर नहीं, समझने पर बल दिया जाता है।

6. कठोर अनुशासन–प्रारम्भिक वैदिक काल में अनुशासन से तात्पर्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों प्रकार के संयम से लिया जाता था। इसकी प्राप्ति के लिए गुरु और शिष्य दोनों बहुत संयम का पालन करते थे, अपने आहार–विहार और आचार–विचार पर नियन्त्रण रखते थे और धर्म और नीति के अनुसार आचरण करते थे। उत्तर वैदिक काल में गुरु के आदेशों और गुरुकुलों के नियमों के पालन को ही अनुशासन माना जाने लगा। तब शिष्यों को गुरु के आदेशों और गुरुकुलों के नियमों का कठोरता से पालन करना होता था। आज के इस लोकतन्त्रीय वातावरण में न तो कठोर नियमों के लिए जगह है और उनके कठोरता से पालन करने की स्थिति है। आज तो बच्चों को कठोर अनुशासन में रखने के स्थान पर स्वतन्त्र वातावरण में रखने पर बल दिया जाता है। परन्तु हमने इस स्वतन्त्र वातावरण के दुष्परिणाम भी देख लिए हैं। अतः आज स्वतन्त्रता और अनुशासन में सन्तुलन रखने की आवश्यकता है।

7. जन शिक्षा का अभाव–वैदिक काल में जन शिक्षा का सम्प्रत्यय ही विकसित नहीं हुआ था। उत्तर वैदिक काल में वर्णानुसार कर्म की शिक्षा देना और शुद्रों को उच्च शिक्षा के अधिकार से वंचित कर देना तो जन शिक्षा का विरोधी कदम था। आज किसी भी देश में जन शिक्षा (एक निश्चित स्तर तक की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा और अशिक्षित प्रौढ़ों की सामान्य शिक्षा) पर विशेष बदल दिया जाता है। हमारे देश भारत में तो लोकतन्त्र है और लोकतन्त्र की माँग है जन शिक्षा की व्यवस्था और शिक्षा के अवसरों की समानता।

8. स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था का अभाव–यूँ तो वैदिक काल में स्त्रियों को किसी भी प्रकार की शिक्षाा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था और उस काल में अनेक स्त्रियों ने भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में विशेष ज्ञान एवं कौशल की प्राप्ति भी की थी परन्तु इनकी संख्या नगण्य थी। उस काल में स्त्रियों के लिए अलग से गुरुकुल नहीं थे और जिन गुरुकुलों में कन्या प्रवेश ले सकती थीं उनमें भी केवल गुरुओं, राजा–महाराजाओं और धनी वर्ग की बच्चियाँ ही प्रवेश ले पाती थीं। इससे साफ पता चलजा है कि उस काल में स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। आज संसार के प्रायः सभी देशों में स्त्री–पुरुष में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाता। लोकतन्त्रीय देशों में तो उन्हें सभी क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हैं। हमने भी स्त्री शिक्षा को पहचाना है और उन्हें किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील है।

9. धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर अधिक बल–वैदिक काल में शिक्षा धर्मप्रधान थी। उस काल में भाषा, साहित्य, धर्म और नीतिशास्त्र पाठ्यचर्या के अनिवार्य विषय थे और इनकी शिक्षा परन्तु सबसे अधिक बहुत बल दिया जाता था। छात्रों की आधे से अधिक शक्ति धर्म ग्रन्थों के अध्ययन और धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में व्यय होती थी। यही कारण है कि ज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रथम पदार्पण करने के बाद भी हमारा देश भौतिक दौड़ में बहुत पीछे रह गया है। यूं आज हम अध्यात्मिक विकास के स्थान पर भौतिक विकास के लिए अधिक प्रयत्नशील है, परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के प्राकृति, सामाजिक और अध्यात्मिक तीनों पक्षों के विकास पर समान बल दिया जाए।

भारतीय शिक्षा पर प्रभाव

वैदिक शिक्षा का आधुनिक भारतीय शिक्षा पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभाव पड़ा है। प्रत्यक्ष रूप में वह वैदिक काल से लेकर आज तक निरन्तर रूप में चली आ रही है। आज भी देश भर में गुरुकुल और संस्कृत विद्यालय चल रहे हैं, यह बात दूसरी है कि ये वैदिक कालीन गुरुकुलों से कुछ भिन्न है। दूसरी ओर हमारी भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ने भी इसके कुछ

गुणों को स्वीकार किया है और इसके दोषों से अपने को बचाया है। इसे हम वैदिक शिक्षा का आधुनिक भारतीय शिक्षा पर अप्रत्यक्ष प्रभाव मान सकते हैं।

उपसंहार

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वैदिक शिक्षा प्रणाली भारतीय शिक्षा प्रणाली की नींव का पत्थर है। उसी के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। सच बात तो यह है कि वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित थी और संस्कृति से हम अलग हो नहीं सकते। आज भी हमारी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वही है जो वैदिक काल में थे। वैदिक काल की भाँति हम आज भी समस्त ज्ञान–विज्ञान, कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या में सम्मिलित करते हैं। आज भी इस शिक्षा और शिक्षार्थियों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। और आधुनिक काल की शिक्षा प्रणाली और वैदिक शिक्षा प्रणाली में जो अन्तर है वह तो विकास के क्रम में होना स्वाभाविक ही था।

सन्दर्भ सूचि–

1. शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, डा0 मालती सारस्वत, आलोक प्रकाशन लखनऊ– इलाहाबाद, दशम संस्करण– 1997
2. भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएँ, डा0 धर्मवीर महाजन एवं डा0 (श्रीमती) कमलेश, 2008, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली–7
3. भारत मैं सामाजिक परिवर्तन, एम. एस. गुप्ता एवं डी. डी. शर्मा, 1987, साहित्य भवनः आगरा।
4. उदीपमान भारतीय समाज में शिक्षक; एन0आर0 स्वरूप सक्सेना; डा0 शिखा चतुर्वेदी; डा0 के0पी0 पाण्डेय; आरलाल बुक डिपो; संस्करण– 2006
5. शिक्षा एवं भारतीय समाज; डा0 रामपाल सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ श्री पी.डी. पाठक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, ग्यारहवाँ संस्करण 1991–921
7. भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्याएँ प्रो. रमन बिहारी लाल, रस्तोगी पब्लिकेशन्स गंगोत्री शिवाजी रोड मेरठ–250002 छठा संस्करण, 2010–11
8. प्रो.लाल, रमन विहारी एवं डा. शर्मा कृष्णकान्त, भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्याएं एवं समाधान आर.लाल बुक डिपो मेरठ।
9. vedic kalin shiksha paddhati
10. vedic kalin shiksha ki visheshtaye
11. vedic shiksha kya hai
12. vedic shiksha board
13. vedic kalin shiksha ka uddeshya
14. vedic shiksha pranali par nibandh
15. vedic education system in hindi
16. vedic kalin shiksha ke sanskar

Web Site-

1. https://en.wikipedia.org
2.https://www.financialexpress.com
3. https://indianexpress.com
4. www.newindianexpress.com
5. https://www.hindivibhag.in
6.www.vedicreserve.mum.edu
7. https://www.indiatoday.in
8. www.vedicheritage.gov.in